International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 204-206

पर्यावरण संरक्षण : एक दार्शनिक विमर्श

डॉ0 उत्तम सिंह
दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

वर्तमान परिदृश्य में पर्यावरण वह है, जो सभी ओर से सृष्टि को व्याप्त किये है। इस दृष्टि से पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ध्वनि, वनस्पति आदि पर्यावरण के मूल आधार हैं। ये तत्व हैं जो चारों तरफ से हमें घेरे हुये हैं और इन्हीं के बीच हमारा जीवन संभव हो पाता है। ये तत्व अनादि काल से एक निश्चित अनुपात में प्रकृति में स्थित हैं। यद्यपि मनुष्य अपनी रक्षा और विकास के लिए इनमें सदैव छेड़–छाड़ करता आया है, परन्तु पहले यह छेड़छाड़ प्रकृति के नियमों के अनुकूल हुआ करता था ताकि इन तत्वों का सन्तुलन बिगड़ने नहीं पाये, लेकिन अब यह छेड़छाड़ इतना अधिक और तेजी से किया जा रहा है कि सन्तुलन बिगड़ने लगा है। इसी क्रम में मनुष्य इतना अधिक धुआं, कचरा उर्वरक, तेज ध्वनि तथा विभिन्न प्रकार के हानिकारक गैस आदि प्रकृति में छोड़ने लगा है कि उसकी शुद्धता नष्ट एवं प्रदूषित हो गयी है। पर्यावरण संकट इसी प्रदूषण और असन्तुलन का परिणाम है।

यह संकट भूमि, जल, वायु, ताप, ऊर्जा, खनिज, ध्वनि तथा वनस्पति आदि सभी क्षेत्रों में पैदा हुआ है। भूमि को मुख्यतः जंगल, कृषि–भूमि तथा पशुपालन– क्षेत्र, इन तीनों हिस्सों में बाँटा जा सकता है, अभी इन तीनों हिस्सों में क्षति पहुँचाई जा रही है, जंगलों को अन्धाधुन्ध काटा जा रहा है। उपग्रहों से प्राप्त चित्रों के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 13 लाख हेक्टेयर भूमि पर के जंगल नष्ट हो रहे हैं। ये जंगल सड़क बनाने, पर्यटन स्थल निर्मित करने, शहर बसाने और नदी–बांध आदि के नाम पर काटे जा रहे हैं अथवा कूट–कागज निर्माण तथा अन्य उद्योगों के नाम पर इन जंगलों के नष्ट होने से जंगलवासियों का जीवन तो कष्ट और संकट में पड़ ही जाता है, सबसे बड़ा संकट जमीन के कटाव का उपस्थित हो जाता है। जमीन की सुरक्षा वर्षा के सीधे प्रहार से जंगल ही करते हैं। इसलिए जंगल के कट जाने से जमीन की ऊपरी परत, जो उर्वर होती है, बारिश के पानी से धुल जाती है, फलतः जमीन कड़ी और बंजर बन जाती है, उसमें किसी प्रकार के पेड़–पौधे या फसल पैदा नहीं हो पाती। दूसरी तरफ पानी में घुली हुई वह मिट्टी नदियों की सतह में जमा होने लगती है, जिसके कारण उनका स्वाभाविक प्रवाह बाधित हो जाता है, जिससे पशुपालन क्षेत्र को नुकसान पहुँचता है। पर्याप्त मात्रा में समय पर नदी का पानी नहीं मिलने के कारण झाड़ी, घास–फूँस आदि पैदा नहीं होते फिर वास तथा कृषि की जमीन बंजर, औद्योगिक क्षेत्र में बदल जाने के कारण भी पशु–पालन क्षेत्र संकुचित हुये हैं। उधर कृषि योग्य जमीन की जैविक सम्पदा कई तरह के उर्वरकों एवं विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों के प्रयोग से भी नष्ट हो रही है। साथ ही नये प्रकार के बीजों, जिसे 'उन्नत कृषि बीज' कहा जाता है के प्रयोग के कारण वनस्पतियों की अनेक प्रजातियां भी समाप्त होती जा रही हैं। इनके अतिरिक्त बड़े–बड़े बाँध आदि के कारण भी जमीन की उर्वरता कम हुई है। इस प्रकार कई कारणों से भूमि का क्षरण हो रहा है जिससे पर्यावरण को गंभीर खतरा पैदा हो गया है।

यद्यपि खतरा जलप्रदूषण और उसकी कमी के कारण भी पैदा हुआ है। छोटे–बड़े कारखानों से निकलने वाले कचरे, नगरों, महानगरों में उपयोग के बाद घरों से निकला हुआ गंदा पानी तथा कूड़ा–करकट एवं अन्य सड़ी–गली चीजें सब नदियों में मिलकर उसके जल को प्रदूषित कर रहे हैं। इससे आदमी को तो शुद्ध जल मिलना मुश्किल हो गया है, ये प्रदूषित जल, मछली तथा अन्य जलीय जीवों को भी नुकसान पहुँचा रहे हैं। यही प्रदूषित जल, समुद्र तक पहुँचकर वहाँ के जलचरों को भी नष्ट कर रहे हैं। वस्तुतः, संकट केवल जल के प्रदूषित होने का नहीं है उसकी मात्रा का लगातार कम होते जाने का भी है। शहरों में तो कुएँ–तालाब की परम्परा कभी रही ही नही, अब गाँवों में भी यह परम्परा नष्टप्राय हो गई है, उनकी जगह नलकूपों का प्रचलन हो गया है, परन्तु नलकूपों से निरन्तर और वृहत् मात्रा में भूमिगत पानी निकालने के कारण जमीन के अंदर का जल भंडार घटता जा रहा है। इसलिए निकट भविष्य में दुनिया को भयंकर जल संकट का सामना करना पड़ सकता है। बी0पी0 घाली ने 'पानी के लिए तीसरा विश्वयुद्ध लड़े जाने की भविष्यवाणी की है'।

पर्यावरण संकट का एक मजबूत तार वायु–प्रदूषण से भी जुड़ा है। रोज–रोज तीव्र अनुपात में बढ़ते जा रहे औद्योगिक संस्थानों तथा मोटरगाड़ियो आदि से निकलने वाला वृहद् मात्रा में धुआँ लगातार वायु को प्रदूषित करता जा रहा है। महानगरों में तो अब शुद्ध वायु मिलना मुश्किल हो गया है। इसके लिए लोगों को नाक पर जाली (कपड़ा) लगानी पड़ रही है और वह दिन दूर नहीं जब नगर–कस्बों की भी यही स्थिति हो जायेगी। इस सन्दर्भ में यह बात अत्यधिक चिन्ताजनक है कि मोटरगाड़ियों से निकलने वाला जहरीला धुआँ बच्चों को अधिक नुकसान पहुँचाता है। बच्चों का कद छोटा होने के कारण यह धुआँ सीधे उनकी नाक और मुँह में चला जाता है। इसीलिए नगरों में पाँच से पन्द्रह वर्ष के बच्चों में से 85 प्रतिशत बच्चे श्वासनली और फेफड़े की तकलीफों से पीड़ित हैं, अनवरत चलने वाले ये कारखाने, रेल, ट्राम सहित सभी प्रकार की गाड़ियाँ वातावरण में अनावश्यक तथा अत्यधिक शोर पैदा करते हैं, जिससे लोगों में बहरापन बढ़ता जा रहा है।

पर्यावरण संकट का एक अतिचिन्ताजनक पहलू तापमान का निरन्तर बढ़ते जाना है। पेट्रोलियम तथा कोयला आदि खनिज ईंधन को अधिक मात्रा में जलाने से कार्बन डाई आक्साइड में लगातार वृद्धि होती जा रही है, इससे वायुमंडल का तापमान भी उत्तरोत्तर बढ़ता

चला जा रहा है। इसका परिणाम निकट भविष्य में दक्षिणी ध्रुव के विशाल हिमखंड का पिघलना होगा, जिससे समुद्र का जलस्तर बढ़ जायेगा और तटवर्ती जमीन जलप्लावन एवं चक्रवात से नष्ट हो जायेगी। इसके अतिरिक्त निरन्तर खनिज ईंधन के जलाये जाने के कारण उसका भंडार भी खत्म होता जा रहा है जिससे ऊर्जा का संकट पैदा हो रहा है।

इसी क्रम में ओजोन परत के क्षय होने को भी लिया जाना जरूरी है। विभिन्न प्रकार के रासायनिक खाद, शीत–ताप नियंत्रक यंत्र तथा विशेष रंगों के स्प्रे आदि के अनवरत प्रयोग से सी.एफ.सी. (क्लोरो–फ्लोरो कार्बन) गैस पैदा होती है, जो ओजोन परत में छिद्र का मुख्य कारण है। ओजोन परत पृथ्वी का सुरक्षा कवच है, जो सूरज से निकलने वाली खतरनाक पराबैंगनी किरणों को उस तक नहीं आने देता, परन्तु उसमें छिद्र हो जाने से पृथ्वी का जीवन कास्मिक विकिरण के खतरे में पड़ गया है।

इसी तरह जीवन को आधार देने वाली पृथ्वी स्वयं मौत के संकट से घिर गई है। इस संकट से उसे बचाने के लिये 1972 में स्टॉकहोम में संयुक्त राष्ट्र की ओर से पहला पर्यावरण सम्मेलन हुआ। इसी सम्मेलन में 5 जून को "विश्व पर्यावरण दिवस" के रूप में घोषित किया गया, तभी से प्रतिवर्ष यह दिवस मनाये जाने के बावजूद पर्यावरण संकट में कोई कमी नहीं आई बल्कि जिन समस्याओं से निजात पाने के लिये यह सम्मेलन हुआ था, वे पिछले वर्षों में और भयावह होती गई। इसीलिये इस सम्मेलन के दो दशक बाद 1992 में रियो–डी–जेनेरियों में दूसरा पर्यावरण सम्मेलन हुआ और उसके पाँच वर्षों बाद 1997 में क्योटो में तीसरा सम्मेलन आयोजित किया गया। परन्तु बार–बार सम्मेलन आयोजित करने के बावजूद पर्यावरण संकट में कोई सुधार नही हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है। सवाल उठता है क्यों ? क्योंकि पिछले तीन दशक से लगातार तर्क–वितर्क के बाद भी पर्यावरण का संकट कम नहीं हो रहा, प्रदूषण उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है और धरती, वनस्पति तथा प्राणियों का जीवन अत्यधिक खतरे में पड़ता जा रहा है।

वस्तुतः, इस धरोहर के वैचारिक सूत्र भारतीय दर्शन के अध्यात्मवाद से मिल सकते हैं। अध्यात्मवाद वह दार्शनिक सिद्धान्त है जो मूल तत्व को चेतन या आध्यात्मिक मानता है, जिसके अनुसार यह आध्यात्मिक चेतन तत्व, जिसे शंकर ब्रह्म कहते हैं, एकमात्र परमार्थ सत्य है और बाकी सारा जगत् मिथ्या है। इस सम्बन्ध में शंकर 'ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या' का सिद्धान्त देते हुये यह कहते हैं कि जब तक ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता तभी तक जगत् सत्य प्रतीत होता है, परन्तु जैसे ही ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है वैसे ही यह जगत् मिथ्या हो जाता है। लेकिन उनके मिथ्या कहने का यह अर्थ नहीं है कि ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर जगत् की सत्ता समाप्त हो जाती है बल्कि इसका अर्थ यह है कि ब्रह्म का ज्ञान नहीं रहने पर जगत् जैसा दिखाई पड़ता है, ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर वैसा दिखाई नहीं पड़ता। वस्तुतः ब्रह्म और जगत् दो अलग–अलग सत्तायें नहीं हैं। वे एक ही हैं– अद्वैत। इसीलिये अज्ञान के कारण जो जगत् भौतिक दिखाई पड़ता है, ज्ञान हो जाने पर वही आध्यात्मिक ब्रह्म दिखने लगता है। इसी बात को महर्षि अरविन्द अपने प्रत्यावर्तन सिद्धान्त के द्वारा और अधिक स्पष्टता से समझाते हुए कहते हैं कि यह ब्रह्म ही है जो विभिन्न सोपानों से उतरते हुए जड़ तक आता है और फिर उन्हीं सोपानों से चढ़ते हुए अपने मूल स्वरूप तक पहुँच जाता है। इस प्रकार जगत्, ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। चर्चित दार्शनिक ओशो (रजनीश) के अनुसार भी– ''.....परमात्मा और संसार में फासला नहीं है, ये एक ही चीज के दो ढंग हैं। .... सृष्टि और 6ष्टा दो नहीं हैं, सृष्टि 6ष्टा का ही फैलाव है।''

अध्यात्मवाद की सहज निष्पत्ति यह होती है कि मनुष्य, मनुष्य के अतिरिक्त सारी प्रकृति और प्रकृति के सभी प्राणियों के साथ आत्मवत् सम्बन्ध कायम करना चाहता है क्योंकि मूलतः सब एक ही हैं, एक ही परमसत्ता की अनन्त अभिव्यक्तियाँ हैं, फिर किसी दूसरे व्यक्ति, दूसरे प्राणी तथा दूसरी वस्तुओं को अनिष्ट पहुँचाना प्रकारान्तर से अपने को ही अनिष्ट पहुँचाना है। इसलिए पेड़–पौधे, नदी–पहाड़, जमीन–जंगल तथा अन्य जीव–जन्तु किसी को अपनी सुख–सुविधाओं के लिये नष्ट करना अंततः स्वंय को ही नष्ट करना है। यही बोध/ज्ञान मनुष्य को प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने तथा उसे प्रदूषित करने से रोक सकता है।

यह सिद्धान्त मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य मानता है, जिसकी व्यावहारिक परिणति यह होती है कि मनुष्य केवल शारीरिक सुख से नहीं बँधा रहता, उसके लिये आत्मिक आनन्द सर्वोपरि होता है, जो आत्मज्ञान में मिल सकता है। इसलिए वह इसे ही प्राप्त करना चाहता है परन्तु इस प्राप्ति में शरीर की उपेक्षा नहीं करता। वह उसकी भी महत्ता और उपादेयता स्वीकारता है, केवल उसे आत्यान्तिक नहीं मानता। इस प्रकार शरीर उसके लिए साधन मात्र होता है, साध्य नहीं। साध्य आत्मज्ञान है। शरीर इसमें सहयोगी होता है। ऐसी स्थिति में शारीरिक उपभोग के लिये भौतिक संसाधनों का अंबार लगाने की कोई अर्थवत्ता नहीं रह जाती क्योंकि तब ये वस्तुयें उसके लिए निरर्थक हो जाती हैं। इनके उत्पादन के लिए प्रकृति को नष्ट करने और उसे प्रदूषित करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार अध्यात्मवादी दर्शन, पर्यावरण सुरक्षा का मजबूत और व्यापक आधार प्रस्तुत करता है।

उपसंहार

इसके लिये मनुष्य को अपने चिन्तन की दिशा बदलने की जरूरत है। अभी विज्ञान आधारित जिस औद्योगिक उपलब्धियों को वह विकास की संज्ञा दे रहा है, उसकी पृष्ठभूमि को आध्यात्मिक बनाने की जरूरत है। विकास के केन्द्र में शरीर के बदले, चेतना को स्थापित करने की जरूरत है। उपभोक्तावादी जीवन शैली को संयमित और सादगीपूर्ण बनाने की जरूरत है। नगर–केन्द्रित सभ्यता–संस्कृति को, गाँव–केन्द्रित सभ्यता–संस्कृति में बदलने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में बार–बार पर्यावरण सम्मेलन आयोजित कर विचार–विमर्श किया जाना शुभ है, परन्तु कोई भी विचार जब तक आचरण एवं बच्चों के शिक्षा–पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से लागू नहीं किया जाता, तब तक उसकी कोई सार्थकता सिद्ध नहीं हो सकती। इसलिये सम्मेलनों/संगोष्ठियों में समस्या की गम्भीरता को देखते हुए उसके समाधान की दिशा में विचार–विमर्श एवं आम जनता को जागरूक किया जाना जरूरी है और दूसरे उस विचार–विमर्श के बाद जो निर्णय लिये जाँय, सभी देशों द्वारा उनका प्रतिबद्ध कार्यान्वयन भी अनिवार्य है, तभी यह संकट दूर हो पायेगा और धरती, पर्यावरण तथा अन्य जीव–जन्तुओं सहित मनुष्य भी सुरक्षित रह पायेगा।

सन्दर्भ

1. सिंहा सच्चिदानन्द, वर्तमान विकास की सीमाएँ, पृ0 53, विकल्प प्रकाशन मुजफ्फरपुर, बिहार, 2000।
2. वहीं पृष्ठ 54

3. वहीं पृष्ठ 32
4. पाण्डेय दुर्गादत्त, पर्यावरण दर्शन, जून 1996 पृष्ठ 252, पुणे।
5. सिंहा सच्चिदानन्द, वर्तमान विकास की सीमाएँ, पृ0 130
6. ओशो (भगवान श्री रजनीश) कस्तुरी कुण्डल बसै, पृ0 286, पुणे।
7. वही पृष्ठ 40
8. मिश्र ह्रदय नारायण, पारिस्थितिकी दर्शन, शेखर प्रकाशन, 1999, इलाहाबाद, पृ0 18
9. बंडिष्टे, डी0डी0, नवमानववाद, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ एकदमी, भोपाल, पृ0 12
10. पर्यावरण निदेशालय, पर्यावरण संरक्षण हमारी भूमिका, उत्तर प्रदेश, पृ0 32